International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
www.hindijournal.com
Volume 1; Issue 1; December 2015; Page No. 53-54

रचना–प्रक्रिया की चेतना का विकास और हिन्दी कहानी

डॉ. संगीता गोगिया[1], डॉ. नंदकिशोर मौर्य[2]

[1] प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

[2] प्राध्यापक,हिन्दी विभाग, गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

रचना–प्रक्रिया आधुनिक आलोचना का एक महत्त्वपूर्ण विवेच्य विषय है। अगर इसे यथार्थपरक साहित्य के विकास के साथ जोड़कर देखें तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिन्दी कहानी के विकास की पीठिका पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी कहानी में रचना–प्रक्रिया की चेतना का विकास प्रेमचन्द की रचना के साथ ही विकास करता है। वस्तुतः हिन्दी कहानी में यथार्थवादी प्रवृति और रचना–प्रक्रिया, दोनों का विकास साथ–साथ लक्षित किया गया है।

यहां पूर्व निर्धारित रूढ तत्वों या शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर ही रचना का मूल्यांकन नहीं किया जाता वरन जीवन और जगत से उसके व्यापक सरोकारों की भी पड़ताल की जाती है। अतः यथार्थवादी कहानी को रचना–प्रक्रिया के संदर्भ में देखने का आग्रह किया गया है। आज की कहानी में कहन के जितने भी प्रयोग और औजार प्रयुक्त किए गए हैं उनमें रचनाकार की रचना–प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मूल शब्दः रचना, रचना–प्रक्रिया, कहानी, साहित्य, समकालीन कहानी, यथार्थ, चेतना, मूल्यांकन, जीवन, सरोकार

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में गद्य साहित्य की विधाओं के साथ–साथ ही रचना–प्रक्रिया की चेतना का भी विकास हुआ। "रचना–प्रक्रिया आधुनिक आलोचना का एक महत्त्वपूर्ण विवेच्य विषय है।"[1] अगर इसे यथार्थपरक साहित्य के विकास के साथ जोड़कर देखें तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिन्दी कहानी के विकास की पीठिका पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी कहानी में रचना–प्रक्रिया की चेतना का विकास प्रेमचन्द की रचना के साथ ही विकास करता है। वस्तुतः हिन्दी कहानी में यथार्थवादी प्रवृति और रचना–प्रक्रिया, दोनों का विकास साथ–साथ लक्षित किया गया है।[2] यथार्थवादी प्रवृति में रचना का मूल्यांकन उसकी समग्रता में ही किया जाता है। यहां पूर्व निर्धारित रूढ तत्वों या शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर ही रचना का मूल्यांकन नहीं किया जाता वरन् जीवन और जगत से उसके व्यापक सरोकारों की भी पड़ताल की जाती है। अतः यथार्थवादी कहानी को रचना–प्रक्रिया के संदर्भ में देखने का आग्रह किया गया है।

हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन उन समस्त कथा मिथकों और कथादर्शों को दरकिनार करता है जो रूमानी और अति वायवीय परिकल्पनाओं के आधार पर हिन्दी जनमानस को बरगलाकर उसे जीवन यथार्थ के वास्तविक संसार से दूर करता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा–साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि का आरम्भ कर पहली बार हिन्दी कथा–साहित्य को श्जीवन की व्याख्याश करने वाले औजार के रूप में सामने रखा है। प्रेमचन्द के ही प्रयासों से हिन्दी– कथा–साहित्य में अभूतपूर्व विविधता आ पायी थी। इन्होंने यथार्थ के साथ रचना–प्रक्रिया को भी कहानी रचना और कहानी आलोचना का आधार बनाया।ङ यहां समाजवादी सोच की रचनाधारा भी थी तो मनोविश्लेषणात्मक रुझान वाली धारा भी। कालान्तर में यहां आंचलिकता को भी महत्त्व मिला और ऐतिहासिकता को भी। बावजूद इन सबके हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द के यथार्थवादी सौन्दर्यबोध वाली परम्परा का निरन्तर विकास हुआ है।

हिन्दी साहित्य में यथार्थ के कई रूप प्रचलित हैं लेकिन यहां उसी यथार्थ को विश्लेषित– विवेचित किया गया है जो जीवन और परिवेश को समग्रता एवं संपूर्णता में अभिव्यक्त करता है, जिसमें कलात्मक उत्कर्ष और सामाजिक प्रतिबद्धता का समुचित समायोजन हो। यही नहीं वह यथातथ्य या यथास्थिति और फोटोग्रेफिकल यथार्थ को न परोसे। अपनी वैचारिक समझ के साथ कल्पना और रोचकता का पुट देकर उसे सामाजिक विकास एवं मनुष्य की बेहतरी एवं प्रगति के औजार के रूप में प्रस्तुत करे।

हिन्दी कहानी में यथार्थवाद की पीठिका भारतेन्दु–युग में तैयार होती है। इस युग की कुछ कहानियों में यथार्थवाद का स्वर मुखर होता है। यों इन आरंभिक कहानियों में यथार्थ के विभिन्न रूपों का स्पष्ट विवरण नहीं है फिर भी यह यथार्थ इस समय के कहानीकारों की उस दृष्टि का परिचायक है जो जीवन की यथार्थ पृष्ठभूमि में समकालीन समस्या और यथार्थ का चित्रण करता है। इस युग की कहानियों का सबसे बड़ा प्रदाय यह है कि यथार्थ की यह अल्प अभिव्यक्ति जन– मानस का ध्यान तिलस्मी–ऐय्यारी और अति आदर्शवादी कहानियों से हटा कर सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित करने का प्रयास करती है। समग्र रूप में कहानी का यह समय यथार्थवादी कहानी परंपरा की पृष्ठभूमि निर्माण का कार्य करता है जिसका विकास आगे की कहानी यानी प्रेमचन्द और उनके युग की कहानी में देखा जाता है ।[4]

प्रेमचन्द और उनके युग की कहानी यथार्थवादी कहानी के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस युग की कहानियों की कथावस्तु कल्पित न होकर जीवन परिवेश के यथार्थ रूपों पर आधारित है। इस युग की कहानी की कथावस्तु के मूल स्रोत विविध मुखी हैं। उनका आधार सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक यथार्थ है चरित्र–सृष्टि की दृष्टि से यह कहानी समय बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युग के पात्र आदर्शवादी लेखक के हाथों की कठपुतली नहीं हैं और न ही कल्पना लोक की ऊंची उड़ान से अवतरित किए गए हैं। इन पात्रों का अपना वजूद है और सामाजिक संघर्षों से जूझते हुए अपने–अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। इन पात्रों के माध्यम से ही हिन्दी कथा साहित्य रंजनकारी विधा से व्यावर्त्त करते हुए अब श्जीवन की व्याख्याश के रूप में सामने आया। इससे हिन्दी कथा साहित्य के विकास में अभूतपूर्व विविधता आई।[5] समाजवादी सोच की

रचनाधारा एक ओर बहती दिखाई दी तो मनोविश्लेषणवादी रुझान वाली दूसरी धारा दूसरी ओर।

और कालान्तर में ऐतिहासिक, आंचलिक और न जाने कितनी नई धाराएं विकसित और विलुप्त हुई। डूबती–उतराती हिन्दी की इस कथाधारा में प्रेमचन्द के नये सौन्दर्य बोध वाली यथार्थवादी परम्परा का निरन्तर विकास हुआ। बहुत संक्षेप में कहें तो बाद के हिन्दी कहानी – साहित्य ने प्रेमचन्द की इस विरासत को भरपूर समृद्ध किया। यशपाल ने शपिंजड़े की उड़ानश, शतर्क का तूफानश में, रेणु ने शरसपिरियाश, शलालपान की बेगमश व शतीसरी कसमश में, धर्मवीर भारती ने शगुलकी बनोश, शसावित्री नं. दो में, भीष्म साहनी ने शचीफ की दावतश, शखून का रिश्ताश में, ज्ञानरंजन ने फेंस के इधर और उधरश में, अमरकान्त ने शज़िन्दगी और जोंकश में, कमलेश्वर ने शराजा निरबंसियाश, शबयानश और शमांस का दरियाश में नयी जमीन, नए सौन्दर्य–बोध को जिस रूप में अभिव्यक्ति दी है[6] वह प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का विकास नहीं तो और क्या है? और आठवें दशक में कहानी की जो तस्वीर हमारे सामने उभरी उसमें फिर एक बार कहानी लेखन की उसी यथार्थवादी परम्परा को नया जीवन मिला जो कहानी के विभिन्न छोटे–मोटे आंदोलनों के बीच डूबती–उतराती रही। युग–जीवन यथार्थ की पेचीदगियों की वजह से यहां कहानी का संसार अत्यन्त विस्तृत और वैविद्यपूर्ण दिखाई पड़ता है। जीवन अनुभवों की निरन्तर बदलती छवियों ने शिल्प को भी लगातार नए–नए रूपों में ढल जाने को विवश किया है। यहां प्रेमचन्द, रेणु, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन की परम्परा को तो सहेजा विकसित किया ही गया है, युग की मांग के अनुरूप कई जमीनें तोड़ी और सिरजी भी गई हैं।

जिस समय शसारिकाश, शसाप्ताहिक हिन्दुस्तानश और शधर्मयुगश जैसी पत्रिकाओं ने हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन का आगाज़ किया उस समय कहानियों में अनुभववाद का बोलबाला था और विचारधारा कहीं कोने में दुबकी पड़ी थी। इस समय हिन्दी कहानी के पास प्रेमचन्द की विचारधारा वाला सौन्दर्यबोध और यथार्थबोध भी था अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी वाला जीवन दर्शन भी था। एक ऐसा सोच भी था जो राजनीति की कुटिल, एक तरफा और यान्त्रिक कवायद में उलझा हुआ था। वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्त्व को अनदेखा करने वाला और सामाजिक तनाव से उत्पन्न हुए गंभीर और बेबाक सवालों से मुंह छिपाने वाला सोच था। युग के दबावों से उत्पन्न संवेदनशून्यता की मार भी उसके सामने थी और स्त्री उत्पीड़न के पुरुष अहमनिष्ठ औजार भी उसके सामने थे। सामन्ती मनोवृत्ति के अवशेषों का दबाव भी वह महसूस कर रहा था तो आधुनिकतावाद से उत्तर आधुनिकतावाद की ओर तेजी से अग्रसित बौद्धिक विलास के पाखण्ड की गूंज भी वह सुन रहा था। इतिहास और विचार के मरने के फरमान भी जारी हो गये थे। शासक वर्ग और पुरोहित वर्ग के निजी स्वार्थ का ताण्डव भी वह देख चुका था। धार्मिक उन्मादों का अन्तहीन सिलसिला और मानवीय शोषण के अनेक कुचक्र भी वहां मौजूद थे। वैश्वीकरण के अनेक जायज नाजायज पुत्र वहां बाजारवाद, उपभोक्तावाद, पूंजीवाद आदि के रूप में अठखेलियां कर रहे थे। धीरे–धीरे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मृगतृष्णा का मायाजाल भी उस पर हावी हो गया था। सम्पूर्ण परिवेश पर फासीवादी ताकतों का छद्म रूप में आतंक आरम्भ हो गया था।

समकालीन यथार्थ की जटिलता ने चरित्रों को भी जटिल और विचित्र बना दिया है। इन जटिल चरित्रों के मनोविज्ञान को कथाकारों ने कहानियों के माध्यम से खोलने का प्रयास किया है जो समकालीन कहानी में चरित्र सृष्टि के लिए उनका अनूठा योगदान है। चरित्र–निर्माण की परम्परा में हंस के अवदान को रेखांकित करने का प्रयास अभी नहीं हो पाया है। प्रस्तुत रूपरेखा में इस दृष्टि से विचार किया जाना भी प्रस्तावित है।[7]

अपनी खोजी तथा न शान्त होने वाली जिज्ञासु प्रवृत्ति, कहानियों में स्वयं की उपस्थिति और कहानी में जीवन के गहन और निजी अनुभवों की शिरकत से एक ऐसी उर्वर भूमि की रचना उन्होंने की है जिस पर आज के अनेक कहानीकार सहज गतिशील हैं। इन कहानियों की यह भी एक खासियत है कि कथ्य की सुघड़ता और विश्वसनीयता के कारण ये पाठक को भी कहानी का एक हिस्सा बना लेती हैं। समकालीन कहानीकार जहां वैचारिक रूप से बौद्धिक हैं वहीं संवेदनात्मक स्तर पर भावुक भी हैं वे अपने पात्रों को मां की तरह सहजते–पोषते हैं। इनकी कहानियों में भावुकता और मानवीय सरोकार कितने गहरे हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

समकालीन कहानियों में व्यक्त कथ्य की संश्लिष्टता, गंभीरता और पैनापन रचनाकारों के व्यापक सौन्दर्यबोध के आधार पर विकास पाते हैं। इन रचनाकारों के सौन्दर्यबोध का पाट अत्यन्त विस्तृत है। उनके यहां सौन्दर्यशास्त्र के परम्परित पैमानों को बड़ी चुनौती मिली है। कथाकार संजीव समकालीन कथा साहित्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं, उनकी कहानियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संजीव के लिए चिकनीदेह, रंगे होठों और कटे बालों वाली अभिजात रमणी सौन्दर्यवान नहीं है। उनके यहां दुनिया की सबसे हसीन औरत वह औरत है जो खेत खलिहानों में दिनभर खटती है, जो परम्परागत रूढ़ियों और धार्मिक पाखण्डों से विद्रोह करती है, जो श्रमिक संघर्षो और आन्दोलनों की अगुवा है, जिसका सौन्दर्य कोयले की खदानों और ईंट के भट्टों में तपकर अत्यन्त शक्तिशाली हो गया है। समकालीन कथा साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकारों की पूरी पीढ़ी संजीव, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश, अरुण प्रकाश, जयनन्दन, शिवमूर्ति, संजय खाती, रघुनन्दन त्रिवेदी, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, महाश्वेता देवी, तसलीमा नसरीन, असगर वजाहत, रत्नकुमार सांभरिया, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि सौन्दर्यशास्त्र के इन्ही नये प्रतिमानों का संधान कर रही है। यही नहीं बिल्कुल ताज़ा पीढ़ी के कहानीकारों दलित और आदिवासी कहानीकारों ने भी सौन्दर्यशास्त्र के परंपरित प्रतिमानों को खारिज करके एक भरापूरा नया सौन्दर्यशास्त्र रचा है। आज की कहानी में कहन के जितने भी प्रयोग और औजार प्रयुक्त किए गए हैं उनमें रचनाकार की रचना–प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है। संजीव, उदयप्रकाश, मैत्रेयी पुष्पा जैसे रचनाकार रचना–प्रक्रिया के नए कीर्तिमान गढ़ रहे हैं।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. कुमार विमलः काव्य–रचना–प्रक्रिया; प्राकथन.
2. परमानन्द श्रीवास्तवः हिन्दी कहानी की रचना–प्रक्रिया; भूमिकारू पृष्ठ 5
3. डॉ. नन्दकिशोर नीलमरू सौन्दर्यशास्त्र के बदलते प्रतिमान और समकालीन कहानी, दस्तक– अंक 12; सं. राघव आलोक, पृष्ठ–96
4. डॉ. नन्दकिशोर नीलमरू सौन्दर्यशास्त्र के बदलते प्रतिमान और समकालीन कहानी, दस्तक– अंक 12; सं. राघव आलोक, पृष्ठ–99
5. डॉ. नन्दकिशोर नीतमः सौन्दर्यशास्त्र के बदलते प्रतिमान और समकालीन कहानी, दस्तक– अंक 12; सं. राघव आलोक, पृष्ठ–99
6. डॉ. नन्दकिशोर नीलमरू सौन्दर्यशास्त्र के बदलते प्रतिमान और समकालीन कहानी, दस्तक– अंक 12; सं. राघव आलोक; पृष्ठ 96
7. डॉ. नन्दकिशोर नीलमः बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य की चुनौतियां और आलोचना की दूसरी परम्परा, दस्तक– अंक 11रू सं. राघव आलोक, पृष्ठ–65